International Journal of Scientific Research in Engineering and Management (IJSREM)
Volume: 10 Issue: 04 | April - 2026 SJIF Rating: 8.659 ISSN: 2582-3930

गुप्तकालीन राजस्व प्रणाली का ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन

पिंकू कुमार

सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग

भागलपुर नेशनल कॉलेज, भागलपुर

तिलका मांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर

सार

प्राचीन भारत के स्वर्ण युग के रूप में विख्यात गुप्त काल (लगभग 320-550 ई.) में राजस्व प्रणाली ने साम्राज्य की आर्थिक समृद्धि, प्रशासनिक स्थिरता तथा सामाजिक संरचना को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। प्रस्तुत शोध गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था के ऐतिहासिक विकास तथा उसके विश्लेषणात्मक अध्ययन पर केंद्रित है। अध्ययन में समुद्रगुप्त, चंद्रगुप्त द्वितीय तथा स्कंदगुप्त जैसे शासकों के अभिलेखों (प्रयाग प्रशस्ति, एरण अभिलेख), पुराणों, स्मृतिग्रंथों तथा फाहियान जैसे विदेशी यात्रियों के विवरणों को प्राथमिक स्रोत के रूप में उपयोग किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से गुप्त राजस्व प्रणाली मुख्यतः कृषि-आधारित थी जिसमें भूमि कर (भाग — उपज का छठा भाग, भोग — आवधिक उपहार), उद्रंग, उपरिकर, द्रंग तथा वन्य एवं व्यापारिक कर प्रमुख थे। भूमि को खिला, अप्रहता तथा सेटु आदि श्रेणियों में वर्गीकृत कर कर-निर्धारण किया जाता था। साथ ही ब्राह्मणों, मंदिरों तथा अधिकारियों को अग्रहार एवं भूमिदान की प्रथा प्रचलित थी, जो राजस्व व्यवस्था को विकेंद्रीकृत रूप प्रदान करती थी। विश्लेषणात्मक रूप से इस अध्ययन में गुप्त राजस्व प्रणाली की तुलना मौर्य काल की केंद्रीकृत व्यवस्था से की गई है। इसमें इस प्रणाली की दक्षता, कृषि उत्पादकता पर सकारात्मक प्रभाव, किसान की स्थिति, सामाजिक न्याय तथा आर्थिक असमानता के पहलुओं का मूल्यांकन किया गया है। निष्कर्ष यह है कि गुप्त राजस्व प्रणाली ने साम्राज्य को स्वर्ण युग की समृद्धि प्रदान की, किंतु बाद में भूमिदान की बढ़ती प्रवृत्ति ने केंद्रीय नियंत्रण को कमजोर कर साम्राज्य पतन में सहायक भूमिका निभाई।

शब्दकुंजी : राजस्व प्रणाली, भूमि कर, भूमिदान, कर संग्रह, विकेंद्रीकरण, प्राचीन भारत की अर्थव्यवस्था आदि

परिचय

भारतीय इतिहास में Gupta Empire का काल (चौथी से छठी शताब्दी ई.) "स्वर्ण युग" के रूप में जाना जाता है। इस काल में न केवल सांस्कृतिक, साहित्यिक और वैज्ञानिक प्रगति हुई, बल्कि प्रशासनिक और आर्थिक संरचना भी अत्यंत सुदृढ़ थी। गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था उस समय की आर्थिक समृद्धि का प्रमुख आधार थी। यह व्यवस्था कृषि पर आधारित थी, किन्तु इसमें व्यापार, उद्योग और विभिन्न प्रकार के करों का भी महत्वपूर्ण योगदान था।

इस शोध लेख में गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं—भूमि कर, अन्य कर, संग्रह प्रणाली, प्रशासनिक ढाँचा, तथा इसके सामाजिक-आर्थिक प्रभाव—का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

गुप्तकालीन अर्थव्यवस्था का स्वरूप

गुप्त काल की अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित थी और इसे भारतीय इतिहास का "स्वर्ण युग" भी कहा जाता है। इस समय अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती थी तथा कृषि ही उनकी आजीविका का प्रमुख साधन था। भूमि उत्पादन राज्य की आय का मुख्य स्रोत था, जिसमें किसानों से उपज का एक भाग कर के रूप में लिया जाता था।

कृषि के साथ-साथ पशुपालन भी महत्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि थी। सिंचाई के लिए कुएँ, तालाब और नहरों का उपयोग किया जाता था, जिससे उत्पादन में वृद्धि होती थी। इस काल में शिल्प और उद्योग भी विकसित थे, जैसे वस्त्र निर्माण, धातु कार्य और मिट्टी के बर्तन बनाना।

व्यापार भी गुप्तकालीन अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण हिस्सा था। आंतरिक व्यापार के साथ-साथ विदेशी व्यापार भी प्रचलित था, विशेषकर दक्षिण-पूर्व एशिया और अन्य क्षेत्रों के साथ। व्यापारियों के संगठन (श्रेणियाँ) सक्रिय थे और वे आर्थिक गतिविधियों को संगठित रूप से संचालित करते थे।

इस काल में स्वर्ण मुद्राओं का व्यापक प्रचलन था, जिससे व्यापार और लेन-देन सुगम हुआ। हालाँकि, भूमि दान की प्रथा के कारण कुछ क्षेत्रों में राज्य की आय में कमी और सामंतवाद की प्रवृत्ति भी बढ़ने लगी। गुप्तकालीन अर्थव्यवस्था एक सुदृढ़, कृषि-प्रधान तथा बहुआयामी व्यवस्था थी, जिसने उस समय की समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया। 2. राजस्व व्यवस्था की प्रमुख विशेषताएँ

गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था की कुछ मुख्य विशेषताएँ

कृषि आधारित राजस्व प्रणाली - सबसे पहली और महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि यह व्यवस्था कृषि प्रधान थी। राज्य की आय का मुख्य स्रोत भूमि कर था, जिसे 'भाग' कहा जाता था। सामान्यतः किसानों से उपज का लगभग एक-छठा भाग कर के रूप में लिया जाता था। यह कर नकद या वस्तु दोनों रूपों में लिया जा सकता था।

करों का विविधीकरण- दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता करों की विविधता थी। गुप्तकाल में केवल भूमि कर ही नहीं, बल्कि भोग, कर (Kara), उपरिकर, शुल्क (व्यापार कर), जल कर और वन कर जैसे अनेक प्रकार के कर भी प्रचलित थे। इससे राज्य की आय के स्रोत व्यापक और स्थिर बने रहते थे।

विकेन्द्रीकृत प्रशासन- तीसरी विशेषता विकेन्द्रीकृत प्रशासन थी। राजस्व संग्रह का कार्य स्थानीय अधिकारियों जैसे विषयपति, ग्रामिक और आयुक्तक के माध्यम से किया जाता था। इससे प्रशासनिक कार्यों में दक्षता आई, लेकिन धीरे-धीरे इससे सामंतवाद को भी बढ़ावा मिला।

भूमि दान की परंपरा - चौथी विशेषता भूमि दान प्रणाली थी। गुप्तकाल में ब्राह्मणों, मंदिरों और धार्मिक संस्थाओं को भूमि दान देने की परंपरा प्रचलित थी, जिसे 'अग्रहारा' कहा जाता था। यह भूमि प्रायः कर-मुक्त होती थी। इससे धार्मिक और सांस्कृतिक संस्थाओं को प्रोत्साहन मिला, लेकिन राज्य की आय में कमी भी आई।

भूमि मापन और कर निर्धारण - पाँचवीं विशेषता भूमि मापन और कर निर्धारण की वैज्ञानिक पद्धति थी। भूमि की उर्वरता, उत्पादन क्षमता और क्षेत्रफल के आधार पर कर निर्धारित किया जाता था, जिससे कर प्रणाली अपेक्षाकृत न्यायसंगत बनती थी।

व्यापार और उद्योग- छठी विशेषता व्यापार और उद्योग से आय थी। आंतरिक और बाह्य व्यापार से शुल्क के रूप में राजस्व प्राप्त होता था। व्यापारी संघ (श्रेणियाँ) इस व्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग थे।

अंततः, गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था की एक प्रमुख विशेषता यह थी कि यह संगठित और संतुलित प्रणाली थी, जिसने उस समय की आर्थिक समृद्धि को सुनिश्चित किया। हालांकि, भूमि दान और विकेंद्रीकरण के कारण बाद के समय में इसकी कुछ कमजोरियाँ भी सामने आईं।

भूमि कर (Land Revenue System)

भूमि कर का महत्व

गुप्त काल में भूमि कर का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान था, क्योंकि यह राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था। उस समय अर्थव्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित थी, इसलिए भूमि से प्राप्त उत्पादन पर लगाया गया कर शासन के संचालन के लिए आवश्यक धन उपलब्ध कराता था। भूमि कर को 'भाग' कहा जाता था और सामान्यतः यह उपज का लगभग एक-छठा भाग होता था। यह कर नकद या वस्तु दोनों रूपों में लिया जा सकता था, जिससे राज्य को लचीलापन मिलता था। इस राजस्व से प्रशासनिक व्यवस्था, सेना, सार्वजनिक निर्माण कार्य तथा धार्मिक गतिविधियों का संचालन किया जाता था।

भूमि कर का महत्व इस बात में भी निहित था कि यह आर्थिक स्थिरता और राज्य की शक्ति का आधार था। एक संगठित भूमि कर प्रणाली ने गुप्तकालीन शासन को सुदृढ़ और प्रभावी बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

भूमि के प्रकार

गुप्त काल में भूमि को उसके स्वामित्व और उपयोग के आधार पर विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया गया था, जो राजस्व व्यवस्था को समझने में महत्वपूर्ण है।

राजकीय भूमि - राजकीय भूमि, जो सीधे राज्य के नियंत्रण में होती थी। इस भूमि से प्राप्त आय पूरी तरह से राज्य के खजाने में जाती थी।

निजी भूमि - निजी भूमि, जो किसानों या व्यक्तियों के स्वामित्व में होती थी। किसान इस भूमि पर खेती करते थे और उपज का एक निश्चित भाग कर के रूप में राज्य को देते थे।

दान भूमि (अग्रहारा)- दान भूमि (अग्रहारा), जिसे ब्राह्मणों, मंदिरों या धार्मिक संस्थाओं को दान में दिया जाता था। यह भूमि प्रायः कर-मुक्त होती थी और इसके स्वामी को विशेष अधिकार प्राप्त होते थे। इन विभिन्न प्रकारों के माध्यम से गुप्तकालीन भूमि व्यवस्था सुव्यवस्थित और बहुआयामी बनी हुई थी।

कर की दरें

गुप्त काल में कर की दरें मुख्यतः भूमि की उर्वरता, उत्पादन क्षमता तथा क्षेत्र के अनुसार निर्धारित की जाती थीं। भूमि कर, जिसे 'भाग' कहा जाता था, सामान्यतः उपज का लगभग एक-छठा (1/6) हिस्सा होता था। हालाँकि, यह दर स्थिर नहीं थी और परिस्थितियों के अनुसार इसमें परिवर्तन भी किया जा सकता था। उपज अधिक होने पर कर की मात्रा बढ़ सकती थी,

जबकि प्राकृतिक आपदा या कम उत्पादन की स्थिति में कर में छूट दी जाती थी। इस प्रकार, कर निर्धारण अपेक्षाकृत लचीला और व्यावहारिक था, जिससे किसानों और राज्य दोनों के हितों का संतुलन बना रहता था।

अन्य कर (Other Taxes)

गुप्त काल में भूमि कर के अतिरिक्त अनेक प्रकार के अन्य कर भी प्रचलित थे, जो राज्य की आय के महत्वपूर्ण स्रोत थे। इन करों से राजस्व प्रणाली अधिक व्यापक और सुदृढ़ बनती थी। भोग (Bhoga) के अंतर्गत प्रजा द्वारा राजा को फल, फूल, अनाज आदि वस्तुएँ प्रदान की जाती थीं। कर (Kara) सामान्य कर था, जो प्रजा पर लगाया जाता था। उपरिकर (Uparikara) विशेष परिस्थितियों में लिया जाने वाला अतिरिक्त कर था। इसके अलावा, शुल्क (Shulka) व्यापार एवं आयात-निर्यात पर लगाया जाता था, जिससे राज्य को वाणिज्यिक गतिविधियों से आय प्राप्त होती थी। जल कर सिंचाई सुविधाओं के उपयोग पर लिया जाता था, जबकि वन कर जंगलों से प्राप्त उत्पादों पर लगाया जाता था। इस प्रकार, विविध प्रकार के करों ने गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था को समृद्ध और प्रभावी बनाया।

राजस्व संग्रह प्रणाली

इस काल की राजस्व संग्रह प्रणाली सुव्यवस्थित, संगठित तथा बहुस्तरीय थी, जिसने उस समय की आर्थिक स्थिरता को सुनिश्चित किया। यह प्रणाली मुख्यतः स्थानीय प्रशासन पर आधारित थी, जिससे कर संग्रह कार्य प्रभावी ढंग से संचालित होता था। राजस्व संग्रह के लिए एक स्पष्ट प्रशासनिक ढाँचा विकसित किया गया था। राज्य को विभिन्न प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित किया गया था, जैसे—जनपद, विषय (जिला) और ग्राम। प्रत्येक स्तर पर अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। विषयपति जिले का प्रमुख अधिकारी होता था, जो राजस्व संग्रह और प्रशासन की देखरेख करता था। ग्राम स्तर पर ग्रामिक (ग्राम प्रधान) कर संग्रह में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। इसके अतिरिक्त आयुक्तक (Ayuktaka) जैसे अधिकारी कर वसूली और लेखा-जोखा रखने के लिए नियुक्त किए जाते थे, जबकि द्रोणिक भूमि मापन का कार्य करता था।

राजस्व संग्रह की प्रक्रिया स्थानीय स्तर से प्रारंभ होती थी। किसान अपनी उपज का एक निश्चित भाग कर के रूप में देते थे, जिसे 'भाग' कहा जाता था। यह कर वस्तु (अनाज आदि) या नकद दोनों रूपों में लिया जा सकता था। स्थानीय अधिकारी इस कर को एकत्र करके उच्च प्रशासनिक स्तर तक भेजते थे। इस व्यवस्था में भूमि मापन और कर निर्धारण की प्रणाली

महत्वपूर्ण थी। भूमि की उर्वरता, क्षेत्रफल और उत्पादन क्षमता के आधार पर कर निर्धारित किया जाता था। इससे कर प्रणाली अपेक्षाकृत न्यायसंगत बनती थी और किसानों पर अत्यधिक बोझ नहीं पड़ता था।

लेखा-जोखा और अभिलेख प्रणाली भी विकसित थी। कर संग्रह से संबंधित सभी विवरणों को अभिलेखों में दर्ज किया जाता था। ताम्रपत्रों और अन्य शिलालेखों से यह जानकारी प्राप्त होती है कि प्रशासन में पारदर्शिता और नियंत्रण बनाए रखने का प्रयास किया जाता था। गुप्तकालीन राजस्व संग्रह प्रणाली में विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। स्थानीय अधिकारियों को पर्याप्त अधिकार दिए गए थे, जिससे प्रशासनिक कार्यों में तेजी और दक्षता आई। हालांकि, यही प्रवृत्ति आगे चलकर सामंतवाद के विकास का कारण भी बनी। गुप्तकालीन राजस्व संग्रह प्रणाली एक संतुलित और प्रभावी तंत्र थी, जिसने राज्य को स्थिर आय प्रदान की और प्रशासनिक व्यवस्था को सुदृढ़ बनाए रखा।

भूमि दान प्रणाली (Land Grant System)

गुप्त काल की एक प्रमुख विशेषता भूमि दान प्रणाली (Land Grant System) थी, जिसने प्रशासनिक, आर्थिक और सामाजिक संरचना पर गहरा प्रभाव डाला। इस व्यवस्था के अंतर्गत राजा द्वारा भूमि को ब्राह्मणों, मंदिरों, मठों तथा अन्य धार्मिक एवं विद्वानों को दान के रूप में प्रदान किया जाता था। इस प्रणाली का सबसे महत्वपूर्ण रूप अग्रहारा प्रथा था, जिसमें ब्राह्मणों को कर-मुक्त भूमि दी जाती थी। इन भूमि दानों के साथ कई विशेष अधिकार भी दिए जाते थे, जैसे—राजस्व वसूली का अधिकार, प्रशासनिक नियंत्रण तथा कभी-कभी न्यायिक अधिकार भी। इस प्रकार दान प्राप्तकर्ता उस क्षेत्र में एक प्रकार के स्वामी के रूप में कार्य करने लगता था।

भूमि दान के प्रमाण मुख्यतः ताम्रपत्र अभिलेखों से मिलते हैं, जिनमें दान की शर्तें, सीमाएँ और अधिकारों का विस्तृत विवरण होता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि यह प्रणाली विधिवत और संगठित थी। भूमि दान प्रणाली के कई सकारात्मक प्रभाव भी थे। इससे शिक्षा, धर्म और संस्कृति को प्रोत्साहन मिला तथा ब्राह्मणों और धार्मिक संस्थाओं की स्थिति सुदृढ़ हुई। किन्तु इसके नकारात्मक प्रभाव भी सामने आए। कर-मुक्त भूमि दान के कारण राज्य की आय में कमी आई और स्थानीय स्तर पर शक्ति का विकेन्द्रीकरण बढ़ा। इससे सामंतवाद की प्रवृत्ति को बल मिला और केन्द्रीय सत्ता कमजोर होने लगी।

विकेन्द्रीकरण और सामंतवाद

गुप्त काल में प्रशासनिक व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण विशेषता विकेन्द्रीकरण (Decentralization) थी, जिसने आगे चलकर सामंतवाद (Feudalism) के विकास को जन्म दिया। यह प्रक्रिया धीरे-धीरे विकसित हुई और गुप्तकालीन शासन की प्रकृति को गहराई से प्रभावित करती रही। गुप्त शासकों ने अपने विशाल साम्राज्य के प्रभावी संचालन के लिए प्रशासनिक अधिकारों का वितरण स्थानीय स्तर पर किया। राज्य को विभिन्न इकाइयों—जैसे विषय (जिला), भुक्ति (प्रांत) और ग्राम—में विभाजित किया गया था। इन क्षेत्रों में स्थानीय अधिकारियों को कर संग्रह, कानून-व्यवस्था बनाए रखने और प्रशासन चलाने की जिम्मेदारी दी गई। इससे शासन अधिक व्यावहारिक और प्रभावी बन गया, क्योंकि स्थानीय अधिकारी अपने क्षेत्र की परिस्थितियों को बेहतर समझते थे।

विकेन्द्रीकरण का एक प्रमुख कारण भूमि दान प्रणाली भी थी। जब राजाओं ने ब्राह्मणों, मंदिरों और अधिकारियों को भूमि दान में दी, तो इसके साथ-साथ उन्हें राजस्व वसूली, प्रशासन और कभी-कभी न्यायिक अधिकार भी प्रदान किए गए। इस प्रकार, दान प्राप्तकर्ता धीरे-धीरे उस क्षेत्र का स्वामी बन गया। इसी प्रक्रिया ने सामंतवाद के विकास को जन्म दिया। सामंत वे व्यक्ति या अधिकारी थे, जिन्हें राजा द्वारा भूमि और अधिकार प्रदान किए गए थे। वे अपने क्षेत्र से कर वसूलते थे और बदले में राजा को निश्चित कर या सैन्य सहायता प्रदान करते थे। इस प्रकार एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था विकसित हुई, जिसमें राजा सर्वोच्च था, उसके नीचे सामंत और उनके अधीन सामान्य प्रजा होती थी।

सामंतों की शक्ति समय के साथ बढ़ती गई। वे न केवल आर्थिक रूप से सशक्त हुए, बल्कि राजनीतिक और सैन्य दृष्टि से भी प्रभावशाली बन गए। इससे केंद्रीय सत्ता पर उनका प्रभाव बढ़ने लगा और कई बार वे स्वतंत्र रूप से कार्य करने लगे। विकेन्द्रीकरण और सामंतवाद के कुछ सकारात्मक प्रभाव भी थे। इससे स्थानीय प्रशासन सुदृढ़ हुआ, क्षेत्रों का विकास हुआ और शासन कार्यों में तेजी आई। साथ ही, सामंतों ने कृषि विस्तार और नए क्षेत्रों के विकास में योगदान दिया। किन्तु इसके नकारात्मक प्रभाव अधिक महत्वपूर्ण थे। केंद्रीय सत्ता कमजोर होने लगी, राज्य की आय में कमी आई और प्रशासनिक एकता प्रभावित हुई। सामंतों के बीच संघर्ष भी बढ़ने लगे, जिससे राजनीतिक अस्थिरता उत्पन्न हुई। इसके अतिरिक्त, सामाजिक असमानता भी बढ़ी, क्योंकि सामंतों के पास अधिक शक्ति और संसाधन केंद्रित हो गए। गुप्तकालीन विकेन्द्रीकरण और सामंतवाद एक ऐसी प्रक्रिया थी, जिसने प्रारंभ में प्रशासन

को सुदृढ़ बनाया, लेकिन दीर्घकाल में केंद्रीय सत्ता के पतन और मध्यकालीन सामंती व्यवस्था की नींव रखी।

व्यापार और राजस्व

इस काल में व्यापार और राजस्व का आपसी संबंध अत्यंत महत्वपूर्ण था। यद्यपि अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार कृषि था, फिर भी व्यापार राज्य की आय का एक महत्वपूर्ण स्रोत बन चुका था। इस काल में आंतरिक व्यापार काफी विकसित था। गाँवों और नगरों के बीच वस्तुओं का नियमित आदान-प्रदान होता था। कृषि उत्पाद, वस्त्र, धातु सामग्री और हस्तशिल्प की वस्तुएँ प्रमुख व्यापारिक सामग्री थीं। व्यापारी संघ या श्रेणियाँ (Guilds) व्यापार को संगठित रूप से संचालित करती थीं, जिससे आर्थिक गतिविधियों में स्थिरता और विस्तार हुआ।

बाह्य व्यापार भी गुप्तकालीन अर्थव्यवस्था का महत्वपूर्ण अंग था। भारत का व्यापार दक्षिण-पूर्व एशिया, चीन तथा अन्य क्षेत्रों के साथ होता था। इस अंतरराष्ट्रीय व्यापार से राज्य को पर्याप्त राजस्व प्राप्त होता था। राज्य व्यापार से शुल्क (Custom Duties) के रूप में आय प्राप्त करता था। आयात और निर्यात पर कर लगाए जाते थे, जिससे राजकोष सुदृढ़ होता था। इसके अतिरिक्त, व्यापारिक मार्गों की सुरक्षा और सुविधा प्रदान करने में राज्य की महत्वपूर्ण भूमिका थी, जिससे व्यापार को प्रोत्साहन मिला। हालाँकि, गुप्तकाल के उत्तरार्ध में विदेशी व्यापार में कुछ कमी आई, जिससे राजस्व पर भी प्रभाव पड़ा। इस प्रकार, व्यापार गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण पूरक था, जिसने आर्थिक समृद्धि और राज्य की आय में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सिक्का व्यवस्था

इस काल की सिक्का व्यवस्था अत्यंत विकसित और सुव्यवस्थित थी, जिसने उस समय की आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा दिया। इस काल में विशेष रूप से स्वर्ण मुद्राओं (Gold Coins) का व्यापक प्रचलन था, जो उच्च शुद्धता और सुंदरता के लिए प्रसिद्ध थीं। गुप्त शासकों, विशेषकर Samudragupta और Chandragupta II ने विभिन्न प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ जारी कीं, जिन पर उनकी उपाधियाँ, चित्र और धार्मिक प्रतीक अंकित होते थे। इसके अलावा चाँदी और ताँबे के सिक्के भी सीमित मात्रा में प्रचलित थे। इन मुद्राओं ने व्यापार और वाणिज्य को सुगम बनाया तथा कर संग्रह को भी अधिक व्यवस्थित किया। हालाँकि, गुप्तकाल के उत्तरार्ध में स्वर्ण सिक्कों की संख्या में कमी आई, जो आर्थिक परिवर्तन का संकेत माना जाता है।

राजस्व व्यवस्था के सामाजिक-आर्थिक प्रभाव

गुप्त काल की राजस्व व्यवस्था का समाज और अर्थव्यवस्था पर गहरा प्रभाव पड़ा। यह व्यवस्था केवल राज्य की आय का साधन ही नहीं थी, बल्कि इसने सामाजिक संरचना, आर्थिक विकास और जीवन शैली को भी प्रभावित किया। इसका कृषि विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। भूमि कर प्रणाली सुव्यवस्थित होने के कारण किसानों को उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिला। सिंचाई सुविधाओं के विकास और नई भूमि के उपयोग से कृषि क्षेत्र का विस्तार हुआ, जिससे खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि हुई। दूसरे, आर्थिक समृद्धि में इस व्यवस्था का महत्वपूर्ण योगदान था। विविध प्रकार के करों और व्यापार से प्राप्त आय ने राज्य को आर्थिक रूप से सशक्त बनाया। इससे व्यापार, उद्योग और शिल्प का विकास हुआ तथा नगरों का विस्तार हुआ।

इस व्यवस्था ने ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत किया। गाँव आर्थिक इकाइयों के रूप में विकसित हुए और स्थानीय उत्पादन तथा उपभोग की प्रणाली सुदृढ़ हुई। इससे आत्मनिर्भरता की भावना बढ़ी। हालाँकि, इसके कुछ नकारात्मक प्रभाव भी थे। भूमि दान प्रणाली के कारण सामाजिक असमानता बढ़ी, क्योंकि ब्राह्मणों और धार्मिक संस्थाओं को विशेष अधिकार प्राप्त हो गए। इससे समाज में उच्च और निम्न वर्गों के बीच अंतर अधिक स्पष्ट हो गया।

इसके अतिरिक्त, सामंतवाद का विकास भी एक महत्वपूर्ण प्रभाव था। भूमि दान और विकेन्द्रीकरण के कारण स्थानीय शासकों की शक्ति बढ़ी, जिससे केंद्रीय सत्ता कमजोर होने लगी। सामंतों द्वारा किसानों से अधिक कर वसूली की संभावना भी बढ़ गई, जिससे किसानों पर बोझ बढ़ा। गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था ने जहाँ एक ओर आर्थिक विकास और स्थिरता को बढ़ावा दिया, वहीं दूसरी ओर सामाजिक असमानता और राजनीतिक विकेन्द्रीकरण जैसी समस्याओं को भी जन्म दिया। इस प्रकार, इसका प्रभाव बहुआयामी और दीर्घकालिक रहा।

गुप्तकालीन अभिलेखों से साक्ष्य

गुप्त काल की राजस्व व्यवस्था के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी उस समय के अभिलेखों से प्राप्त होती है, जो ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में अत्यंत विश्वसनीय माने जाते हैं। ये अभिलेख मुख्यतः ताम्रपत्र (Copper Plate Inscriptions), शिलालेख और स्तंभ लेख के रूप में मिलते हैं। इन अभिलेखों में भूमि दान, कर व्यवस्था, प्रशासनिक संरचना और अधिकारियों के अधिकारों

का विस्तृत वर्णन मिलता है। विशेष रूप से Prayag Prashasti (प्रयाग प्रशस्ति), जो Samudragupta के शासनकाल से संबंधित है, उस समय की राजनीतिक और प्रशासनिक व्यवस्था की जानकारी प्रदान करती है।

ताम्रपत्र अभिलेखों में भूमि दान की शर्तें, सीमाएँ तथा करों से संबंधित विवरण स्पष्ट रूप से अंकित होते थे। इनसे यह भी ज्ञात होता है कि दान प्राप्त भूमि प्रायः कर-मुक्त होती थी और दानग्राही को कई प्रशासनिक अधिकार प्राप्त होते थे। इन अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि गुप्तकालीन राजस्व प्रणाली सुव्यवस्थित और लिखित नियमों पर आधारित थी। अतः अभिलेख उस काल की आर्थिक और प्रशासनिक व्यवस्था को समझने का प्रमुख स्रोत हैं।

आलोचनात्मक विश्लेषण

इस काल की राजस्व व्यवस्था का आलोचनात्मक विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह प्रणाली अनेक दृष्टियों से प्रभावी होने के बावजूद कुछ सीमाओं से भी युक्त थी। सबसे पहले इसके सकारात्मक पक्ष पर विचार करें तो यह व्यवस्था अत्यंत संगठित और सुव्यवस्थित थी। भूमि कर पर आधारित प्रणाली ने राज्य को स्थिर आय प्रदान की, जिससे प्रशासन, सेना और सार्वजनिक कार्यों का संचालन संभव हुआ। कर निर्धारण में भूमि की उर्वरता और उत्पादन क्षमता को ध्यान में रखा जाता था, जिससे यह अपेक्षाकृत न्यायसंगत प्रतीत होती है। इसके अतिरिक्त, व्यापार और अन्य करों से आय प्राप्त कर राज्य की आर्थिक स्थिति मजबूत बनी रही।

दूसरी ओर, इसके नकारात्मक पक्ष भी महत्वपूर्ण हैं। भूमि दान प्रणाली के कारण राज्य की प्रत्यक्ष आय में कमी आने लगी, क्योंकि दान दी गई भूमि प्रायः कर-मुक्त होती थी। इससे केंद्रीय सत्ता कमजोर होने लगी। साथ ही, विकेन्द्रीकरण की नीति ने धीरे-धीरे सामंतवाद को जन्म दिया। स्थानीय अधिकारियों और सामंतों को अधिक अधिकार मिलने से वे शक्तिशाली हो गए और कई बार केंद्रीय नियंत्रण से बाहर हो गए। इससे प्रशासनिक एकता प्रभावित हुई।

इसके अतिरिक्त, इस व्यवस्था ने सामाजिक असमानता को भी बढ़ावा दिया। ब्राह्मणों और उच्च वर्गों को विशेष अधिकार मिलने से समाज में वर्ग विभाजन गहरा हुआ, जबकि किसानों पर कर का बोझ बना रहा। गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था एक संतुलित लेकिन संक्रमणकालीन प्रणाली थी, जिसने आर्थिक समृद्धि को बढ़ावा दिया, परन्तु दीर्घकाल में इसके कुछ तत्वों ने राजनीतिक और सामाजिक चुनौतियाँ भी उत्पन्न कीं।

निष्कर्ष

गुप्त काल की राजस्व व्यवस्था भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण और विकसित प्रणाली थी, जिसने उस समय की आर्थिक और प्रशासनिक संरचना को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। यह व्यवस्था मुख्यतः कृषि पर आधारित थी, जिसमें भूमि कर राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था, किन्तु इसके साथ-साथ व्यापार, उद्योग और अन्य करों से भी पर्याप्त राजस्व प्राप्त होता था। इस प्रणाली की विशेषता इसकी संगठित और संतुलित प्रकृति थी, जिसमें भूमि मापन, कर निर्धारण और संग्रह की स्पष्ट व्यवस्था मौजूद थी। स्थानीय प्रशासन की सक्रिय भूमिका ने राजस्व संग्रह को प्रभावी बनाया और शासन को सुचारु रूप से चलाने में सहायता की।

हालाँकि, भूमि दान प्रणाली और विकेन्द्रीकरण जैसी नीतियों ने धीरे-धीरे इसके नकारात्मक प्रभाव भी उत्पन्न किए। कर-मुक्त भूमि दान से राज्य की आय में कमी आई और सामंतवाद का विकास हुआ, जिससे केंद्रीय सत्ता कमजोर पड़ने लगी। साथ ही, सामाजिक असमानता में भी वृद्धि हुई। फिर भी, समग्र रूप से देखा जाए तो गुप्तकालीन राजस्व व्यवस्था उस समय की आर्थिक समृद्धि और प्रशासनिक दक्षता का प्रमुख आधार थी। इसने न केवल तत्कालीन शासन को सुदृढ़ किया, बल्कि भारतीय प्रशासनिक परंपराओं के विकास में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। गुप्तकालीन प्रशासनिक और राजस्व प्रणाली ने भारतीय प्रशासनिक परंपराओं को गहराई से प्रभावित किया और आने वाले कालों के लिए आधार तैयार किया।

संदर्भ-सूची :

1. *शर्मा, रामशरण. प्राचीन भारत का आर्थिक इतिहास. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1983।*
2. *थापर, रोमिला. प्राचीन भारत (आरंभ से 1300 ई.). नई दिल्ली: पेंगुइन, 2002।*
3. *कोसांबी, डी. डी. प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता. लंदन: रूटलेज, 1965।*
4. *सिंह, उपेन्द्र. प्राचीन एवं प्रारंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास. नई दिल्ली: पियरसन, 2008।*
5. *अल्तेकर, ए. एस. प्राचीन भारत में राज्य और शासन. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1949।*
6. *मजूमदार, आर. सी. प्राचीन भारत. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, 1977।*